**ओ३म्**

**“सन्तान को जन्म देकर निर्माण करने में माता का सर्वाधिक योगदान”**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 जन्म देने वाली सत्ता व शक्ति का नाम माता है। सारा संसार वा मनुष्य अपनी अपनी माताओं से उत्पन्न होते वा जन्म लेते हैं। यदि मां न होती तो संसार में कहीं मनुष्य व अन्य प्राणी जो माताओं से उत्पन्न हुए हैं, दिखाई न देते। यह सृष्टि यदि चल रही है तो उसमें जन्मदात्री मां की भूमिका सर्वापरि अनुभव होती है। मनुष्य की अनेक मातायें होती है। ईश्वर भी हमारी माता है। वेदों में ईश्वर को माता कहा गया है। ईश्वर संसार में सभी माताओं की भी माता है। उसी ने इस सृष्टि वा भूमि माता को बनाया है। हमारी यह भूमि माता सूर्य के चक्र लगाती है। इस कारण भूमि को सूर्य की पुत्री कह सकते हैं। वैज्ञानिक लोग भूमि को सूर्य से पृथक हुआ एक हिस्सा ही मानते हैं। इससे भी भूमि सूर्य से उत्पन्न होने से सूर्य की पुत्री कही जा सकती हैं। भूमि माता और हमारी जन्मदात्री माता के समान ही गो माता भी है जो अपने अमृततुल्य दुग्ध व बैल आदि से हमारा पोषण करती है। वैदिक धर्म व संस्कृति में गोपालन को आवश्यक बताया गया है। जो गोपालन करेगा वह गोमाता के शुद्ध दुग्ध को प्राप्त कर सकता है और उस दुग्ध के गुणों से उसका शरीर निरोग व बलिष्ठ बनकर जीवन में सफलतायें व साध्य को प्राप्त कर सकता है। गोदुग्ध से मनुष्य की बुद्धि को भी शक्ति मिलती है। प्राचीन काल से हमारे गुरुकुलों में गोपालन को अनिवार्य रूप से करने और गोमाता के दुग्ध का ही सेवन करने की परम्परा है। योगेश्वर कृष्ण जी का गोपालक होना प्रसिद्ध ही है। उनका तो एक नाम भी गोपाल कहा जाता है। गोदुग्ध वा गोपालन के ही कारण ही हमारे देश में वेद ऋषि उत्पन्न होते थे और हमारा देश विश्व में धर्म व संस्कृति का ज्ञान देने वाला प्रथम व अग्रणीय देश था। वेदों की उत्पत्ति का गौरव भी ईश्वर ने भारत व इसके प्राचीन नाम आर्यावर्त्त को ही प्रदान किया है। परमात्मा ने ऋषियों को वेदों का ज्ञान जिस स्थान पर प्रदान किया उसका नाम तिब्बत है। सृष्टि के आरम्भ में जिस समय वेदों का ज्ञान दिया गया उस समय सारा संसार एक देश था। वेदों का ज्ञान मिलने के बाद कालान्तर में अतीत व वर्तमान के देश अस्तित्व में आये हैं। गोमाता की ही तरह वेद भी हमारी माता है जो ईश्वर, जीवात्मा, इस सृष्टि व समस्त आचार व्यवहार से हमारा व विश्व के मानवों का परिचय कराती है। यदि वेद न होता तो मनुष्य गूंगा और अज्ञानी होता। वेद और इसके ज्ञान सहित अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न ऋषियों ने ही सृष्टि के सभी मनुष्यों को वेद से भाषा व ज्ञान को प्राप्त करके हमें व संसार को वेद भाषा व वैदिक ज्ञान प्रदान किया है। संसार में वेद माता का महत्व भी निर्विवाद है।

 हम मनुष्यों की बात कर रहे हैं। सभी मनुष्यों की एक माता होती है जिसने हमें जन्म दिया है। हम जीवात्मा के रूप में माता के गर्भ में आते हैं और फिर वहां दस मास तक रहकर एक शिशु के रूप में विकसित होकर जन्म लेते हैं। इस दस मास में माता को कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं इसका अनुमान लगाना भी कठिन है। जन्म के बाद भी सन्तान के पालन में माता को अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। एक छोटे से शिशु को सम्भालना आसान काम नहीं है। उसको समय पर दुग्धपान कराना, उसे स्वच्छ रखना, उसे व्यायाम आदि कराना, रोग होने पर उसका घरेलु उपचार करना व उसे किसी वृहद रोग होने पर योग्य चिकित्सकों से चिकित्सा कराना आदि अनेक प्रकार के कष्ट हमारी माता व पिता मिलकर उठाते हैं। शिशु को स्वास्थ्य विषयक कोई कष्ट न हो इस कारण माता को भी ऐसा भोजन करना पड़ता है जो शिशु के स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक होता है। माता ही शिशु को बोलना सिखाती है। शिशु यदि किसी को सबसे अधिक जानता व पहचानता है तो वह उसकी माता ही होती है। माता समीप हो तो शिशु निश्चिन्त रहता है। यदि मां पास में न हो तो शिशु रोता चिल्लाता है और माता के समीप आने पर ही वह चुप होता है। इस प्रकार माता-पिता के पोषण के कार्यों से शिशु का शरीर वृद्धि को प्राप्त करता रहता है। जब शिशु बड़ा हो जाता है तो उसे विद्यालय वा स्कूल में शिक्षा के लिए भेजा जाता है। लगभग 20 वर्ष तक वह शिक्षा प्राप्त करता है। उसकी शिक्षा पर माता-पिता भारी व्यय करते हैं। इस प्रकार शिशु के पालन पोषण व उसे शिक्षित करने व उनके विवाह आदि कराने में ही माता पिता का जीवन व्यतीत होता है। जब वह शिशु 25-30 वर्ष की अवस्था में अर्थोपार्जन में सक्षम व समर्थ होता है तो माता पिता का वार्धक्य आरम्भ हो जाता है। अभी तक माता-पिता अपनी सन्तानों के सहायक थे। उनकी सेवा, सहायता व पालन पोषण का परिणाम ही स्वस्थ व उन्नत सन्तान होती है। जब सन्तान अपने पैरों पर खड़ी हो जाती है तो क्या उसका यह कर्तव्य नहीं कि वह अपने माता-पिता की आवश्यकताओं व भावनाओं का ध्यान रखे? आजकल देश का जो वातावरण बना है उसमें कुछ ही सन्तानें अपने कर्तव्य को पूरा करती होंगी? कोई कहे या न कहे परिवार के माता-पिता व वृद्ध जन यह अनुभव करते हैं कि सन्तानों से उन्हें वह सेवा व आदर आदि प्राप्त नहीं होता जो कि उनको मिलना चाहिये। इसका परिणाम यह होता है कि अधिकांश माता-पिता अपने जीवन के सान्ध्यकाल में एकाकी जीवन व्यतीत करने के लिए विवश होते हैं। कईयों का तो बहुत बुरा हाल होता है जिसें हम टीवी आदि पर देखते हैं और समाचार पत्रों आदि में आसपास ऐसे दृश्य देखने व सुनने को मिल जाते हैं।

 वैदिक धर्म व संस्कृति माता-पिता को सन्तान का प्रथम व द्वितीय देवता बताती है। माता व पिता इस कारण से देव हैं कि वह सन्तान से कुछ लेते नहीं हैं और देते इतना है कि जिसे संसार की कोई सन्तान चाह कर भी चुका नहीं सकती। बाल्मीकि रामायण में राम की मातृ-भक्ति व पितृ भक्ति के दर्शन होते हैं जो कि निःसन्देह वेद की शिक्षाओं का जीवन्त उदाहरण है। रामायण का एक उदाहरण हमें अत्यन्त प्रेरणाप्रद लगता है। इसमें राम अपनी माता से कहते हैं कि यदि पिता मुझे कहें कि जलती आग में कूद जाओं तो राम बिना सोचे विचारे जलती आग में कूद सकता है। विश्व इतिहास में सन्तान विषयक ऐसा उदाहरण नहीं मिलेगा। राम के यह वाक्य पितृ भक्ति का ऐसा आदर्श है कि शायद इससे बढ़कर दूसरा उदाहरण हो ही नहीं सकता। धन्य हैं हमारे पूर्वज व वैदिक संस्कृति। पूरी रामायण ही मातृ व पितृ भक्ति के आदर्श उदाहरणों सहित राम के आदर्श वेदमय जीवन से भरी पड़ी है। जिसने बाल्मीकि रामायण का अध्ययन किया है व उसकी शिक्षाओं को अपने जीवन में धारण किया है वह मनुष्य धन्य व भाग्यशाली है।

व्यक्तिगत जीवन में यदि देखें तो हम आज जो कुछ भी हैं, उसमें हमारी माता का प्रमुख योगदान व भूमिका है। हमारा शरीर व शिक्षा तो मुख्य रूप से उनकी देन है। उनके द्वारा दिये गये वातावरण में रहकर ही हमने जो सीखा उसी से अपने जीवन की सभी सफलताओं को प्राप्त किया है। आर्यसमाज में ऐसे अनेक उदहारण मिलते हैं कि कई लोग अपढ़ माता पिताओं के यहां उत्पन्न हुए और उनके त्याग व बलिदान के कारण वह वेद और आर्यसमाज से परिचित होकर ईश्वर, जीवात्मा व सृष्टि के यथार्थ स्वरूप को जान सके। उन निर्धन माता-पिताओं की सन्तानों ने प्रभूत यश अर्जित किया। आवश्यकतानुसार धन व अन्य साधन भी उन्हें प्राप्त हुए। उनका जीवन सुखपूर्वक व सन्तोष के साथ व्यतीत हो रहा है। ऐसे मित्रों से यह भी ज्ञात होता है कि जब उनका जन्म हुआ तो माता-पिता अतीव निर्धन थे परन्तु उन्होंने अपनी सभी सन्तानों के पोषण व शिक्षा-दीक्षा में कमी नहीं आने दी। अत्यधिक तप व पुरुषार्थ कर बच्चों का पालन पोषण व शिक्षा प्राप्त कराई। ऐसी मातायें घर व परिवारों मे ंअभावों की स्थिति में महीनों में अनेकानेक बार व्रत रखकर अपनी सन्तानों को भोजन कराती थी और बच्चों की कुचेष्टायें करने पर दण्ड भी देती थी। बाद में जब बच्चे योग्य हुए तो माता-पिता सन्तानों से बिना किसी प्रकार की सेवा कराये ही परलोक सिधार गये। ईश्वर ने संसार के जो नियम बनायें हैं वह अदभुद हैं और बहुत सी बातें तो समझ में नहीं आती। मनुष्य सोचता है कि काश ऐसा होता, परन्तु जो वह चाहता है, कई बार नहीं हो पाता। इस लेख के माध्यम से हम यही कहना चाहते हैं कि जिन लोगों के माता-पिता जीवित हैं वह उनका अपनी वाणी, व्यवहार, सेवा, भोजन एवं वस्त्र आदि से सेवा करें। बीता हुआ समय वापिस नहीं आता। ऐसा करके उन्हें सुख व सन्तोष प्राप्त होगा। कोई भी सन्तान माता-पिता के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकती। उनकी आत्मा को सन्तुष्ट कर हम उन्हें सुखी करके स्वयं भी सुखी हो सकते हैं। ईश्वर की भी वेदों में यही आज्ञा है। ऋषि-मुनि भी माता, पिता व आचार्यों एवं सभी पात्र लोगों की सेवा व सहायता करने की शिक्षा व आज्ञा करते हैं। हमें वेदों का अध्ययन करना चाहिये और वेद मार्ग पर ही चलना चाहिये। यही मार्ग हमें धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की ओर ले जाता है। ऋषि दयानन्द का साहित्य पढ़कर हमें अपने सभी कर्तव्यों का ज्ञान हो सकता है और इहलोक और परलोक को हम सुधार सकते हैं। इसी के साथ इस लेख को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**